शोध मंथन Vol. XIII No.I Jan.-Mar.2022 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

बौद्ध शिक्षा पद्धति एवं शिक्षा केन्द्र

डॉ० शशि नौटियाल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
इतिहास विभाग
जे०वी० जैन कॉलेज

प्राप्तिः 06.02.2022
स्वीकृतः 16.03.2022

रवि कुमार
शोधार्थी
जे०वी० जैन कॉलेज
ईमेलः *ravikapil9797@gmail.com*

सारांश

मनुष्य के चरित्र निर्माण में ज्ञान का अत्याधिक महत्व है। प्राचीन काल से ही भारत की परम्परा उच्च कोटि की शिक्षा पद्धति की रही है। अपने निर्वाण प्राप्ति के साथ ही गौतम बुद्ध ने अर्जित किये ज्ञान को विश्व में फैलाने का प्रयास किया। बौद्ध शिक्षा पद्धति का मुख्य उद्देश्य निर्वाण प्राप्ति था। पवज्जया संस्कार के साथ शुरू हुई शिक्षा का उच्च स्तर उपसम्पदा संस्कार के बाद होता था। बौद्ध मठ, विहार शिक्षा प्राप्ति के संस्थान थे जिनका अधिक विकसित रूप हम ओदान्तपुरी, वल्लभी, विक्रमशिला, नादिया इत्यादि महाबोधि विहारों के रूप में देखते हैं एवं पराकाष्ठा अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त नालंदा महाबोधि विहार के रूप में देखते हैं। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में पाली, संस्कृत में बौद्ध साहित्य, तर्कशास्त्र, आयुर्विज्ञान, शिल्पज्ञान इत्यादि की शिक्षा दी जाती थी। प्रवेश शिक्षा का होना बौद्ध शिक्षा प्रणाली की विशेषता थी।

मुख्य बिन्दू

उपसम्पदा, निर्वाण, महाबोधिविहार, पवज्जया, नालंदा।

महाजनपदकाल में लोहे के विस्तृत प्रयोग से कृषि में विस्तार हुआ एवं इसने नगरीय संस्कृति के विकास में सहयोग दिया। इस द्वितीय नगरीकरण काल में ही कई नवीन वैचारिक अन्नीश्वरवादी धार्मिक परम्पराओं का उद्भव हुआ। बौद्ध धर्म उनमें सबसे प्रबल एवं प्रसिद्ध हुआ।

महात्मा बुद्ध ने ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् अपने ज्ञान को साधारण मानस तक अपने उपदेशों के द्वारा पहुँचाया जिसका मुख्य उद्देश्य निर्वाण प्राप्ति था। बौद्ध शिक्षा प्रणाली इसी उद्देश्य को प्राप्त करने पर आधारित थी। प्रस्तुत शोध आलेख "बौद्ध शिक्षा पद्धति एवं शिक्षा केन्द्र" में प्रसिद्ध बौद्ध विहारों की प्रवेश परीक्षा, पढ़ाये जाने वाले विषय, इनको दी जाने वाला अनुदान के साथ–साथ बौद्ध शिक्षा एवं वैदिक शिक्षा प्रणाली के मध्य अन्तरों एवं समानताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

बौद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था ने तत्कालीन जीवन में एक नवीनता का शिलारोपण किया है। यद्यपि भारतवर्ष में सदैव से पवित्रता एवं सात्विकता का महत्व रहा था किन्तु बौद्ध धर्म ने और भी अधिक पवित्रता से सात्विकता पर जोर दिया है। उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा में धनी–निर्धन, पुरुष–महिला, जाति के आधार पर शिक्षा प्रदान करने पर जो भेदभाव आ गया था, बौद्ध शिक्षा प्रणाली में उसका अभाव था। जीवन में संयम तथा अनुशासन लाने के प्रयास में बौद्ध शिक्षा को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। बौद्ध कालीन शिक्षा न केवल धार्मिक व आध्यात्मिक थी वरन् सांसारिक भी थी।

सभी छात्रों को अपनी–अपनी योग्यता व क्षमता के अनुरूप विकास करने के पर्याप्त अवसर मिलते थे। वैदिककालीन समय में शिक्षा तपस्या थी लेकिन बौद्धकालीन शिक्षा में शरीर को कृश करने पर विश्वास नहीं था। छात्रों की आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाता था। बौद्ध शिक्षा में प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों का उपयोग किया जाता था। बौद्धकाल में शिक्षा के लिए संगठित व सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकता थी। बुद्धकालीन शिक्षा का वित्तीय प्रबन्ध व्यवस्थित तथा स्थाई था। शिक्षा के लिए आय के पर्याप्त साधन लगभग वही थे जो वैदिक काल में उपलब्ध थे। किन्तु शिक्षा संस्थाओं अर्थात् बौद्ध मठों को निरन्तर वित्तीय सहायता मिलती रहे इसलिए कुछ साधन दृढ़ व स्थाई बनाये गये थे। राजकीय सहायता अत्यधिक बढ़ गयी थी। राजस्व, उपहार, दान, समाज द्वारा सहायता, भिक्षा तथा शुल्क इत्यादि बौद्ध विद्यापीठों की आय के प्रमुख स्रोत थे।[1] हिन्दू एवं बौद्ध शिक्षा–पद्धतियों में कोई मौलिक भेद नहीं था। उनके सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों में पर्याप्त समानता थी। चूँकि बौद्ध–दर्शन में संसार दुःखमय माना गया, अतः प्रारम्भ में बौद्ध शिक्षा केवल बन्धनात्मक संसार का त्याग कर सन्यास ग्रहण करने वाले भिक्षुओं तक ही सीमित रही, लेकिन कालान्तर में बौद्ध शिक्षा के द्वार उपासकों के लिए भी खुल गए।

ए0एस0 अल्टेकर के अनुसार भी दोनों ही प्रकार की शिक्षा–व्यवस्थाओं के आदर्श एवं पद्धति में सादृश्य था। **राधाकुमुद मुकर्जी** बौद्ध–पद्धति को मूलतः ब्राह्मणीय शिक्षा–पद्धति से उद्भूत और विकसित मानते हैं। उनके अनुसार जो किंचित भेद उत्पन्न होता है, वह देश और काल के प्रभाव के कारण ही उत्पन्न हुआ। उन्होंने बौद्ध धर्म की उत्पत्ति को औपनिषद् चिन्तन की परिणति माना है। क्योंकि संसार की क्षणभंगुरता, दुःखात्मकता तथा सांसारिक सुखों की निस्सारता की चर्चा उपनिषद् काल से ही प्रारम्भ हो गयी थी। मुनियों, श्रमणों एवं परिव्राजकों के समूह भी उत्तर वैदिक युग में ही अस्तित्व में थे। सन्यास की परम्परा भी वैदिक समाज में स्वीकृत हो चली थी तथा कर्मवाद और पुनर्जन्म सिद्धान्त उपनिशद् युग के लिए सुविदित थे। उपनिषदों की इस विचार–पद्धति ने महात्मा बुद्ध के चिन्तन को प्रभावित किया था।[2] बौद्ध संघ में प्रवेश करने वाले श्रमणों को गुरुकुलों के बह्मचारियों की भाँति ही ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना पड़ता था। बौद्ध संघ में भी शिक्षा देने वाले वरिष्ठ भिक्षु आचार्य और उपाध्याय कहे जाते थे। गुरु शिष्य के बीच पारस्परिक सम्बन्धों का स्वरूप भी ब्राह्मणीय गुरुकुल परम्परा के अनुरूप ही परिकल्पित था। जिस प्रकार ब्राह्मणीय शिक्षा–पद्धति में विद्यारम्य और उपनयन जैसे संस्कार होते थे, इसी प्रकार बौद्ध शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत प्रव्रज्या और उपसम्पदा जैसे संस्कारों की व्यवस्था की गई थी।

बौद्ध युग में छपाई अथवा मुद्रण कार्य का प्रचलन तो नहीं हो सका था किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी। उस समय की अनेक पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियाँ भी कहीं–कहीं संग्रहालयों या पुस्तकालयों में देखने को मिल जाती हैं। अतः इस काल की शिक्षा में मौखिक और लिखित विधियों का पर्याप्त विकास हो गया था, परन्तु लेखन सामग्री के सहज से सुलभ न होने के कारण मौखिक शिक्षण की ही प्रधानता थी।

बौद्ध शिक्षा में धर्म, दर्शन तथा व्याकरण पर विद्वानों के व्याख्यान होते थे। इन व्याख्यानों में गूढ़ व जटिल प्रकरणों पर विद्वान भिक्षु सिद्धांत, तर्क, दृश्टान्त तथा कारण आदि माध्यमों का सहारा लेकर लोकभाषा में प्रवचन करते थे।

गुरु भिक्षु अपने शिष्यों को शिक्षा प्रदान करने के लिए व्याख्या विधि का भी पर्याप्त प्रयोग करते थे। उच्च शिक्षा में इसका प्रयोग अधिक किया जाता था। वैदिक काल की भाँति ही बौद्धकाल में मौखिक शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी। गुरु छात्रों से प्रश्न करता, छात्र उनको प्रश्नों के उत्तर देते, शंका होने पर छात्र के प्रश्नों के उत्तर गुरु देते थे। कुछ तथ्य ऐसे आते थे जहाँ गुरुओं को तथ्यों की व्याख्या करनी होती थी। विवादों की बात आ जाती तो उसके समाधान के लिए आठ प्रमाण दिये जाते थे – 1. सिद्धान्त, 2. सेतु, 3. उदाहरण, 4. साधर्म्य, 5. वैधर्म्य, 6. प्रत्यक्ष, 7. अनुमान, 8. आगम

बौद्ध शिक्षा में समारोह एवं सम्मेलन को विशेष महत्व दिया जाता था। अनेक महत्वपूर्ण शैक्षिक घटनाएँ बड़े–बड़े समारोह आयोजित करके विद्वत समाज के समक्ष प्रस्तुत की जाती थीं। इन समारोहों तथा सम्मेलनों को विद्वतसभा के नाम से सम्बोधित किया जाता था। सिद्वत सभाएँ अक्सन किसी पर्वत पर, विशाल गुफाओं में या बड़े–बड़े मठों एवं विहारों में आयोजित की जाती थीं। इन सभाओं में महत्वपूर्ण शास्त्रार्थ भी सम्पन्न किये जाते थे।

बौद्ध शिक्षा में भ्रमण पर्यटन के माध्यम से प्रकृति का सम्यक ज्ञान प्राप्त करने की विधि को बहुत महत्व दिया गया है। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग जिन्होंने इन बोध विहारों में अध्ययन एवं अध्यापन दोनों किया था उन्होंने संघ की शिक्षा, जीवन पद्धति एवं दार्शनिक विचारों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[3]

बौद्ध शिक्षा पद्धति में स्थापत्य कला होने के कारण इस कला का विकास पाते हैं। इस कला के बौद्ध विहार और स्तूप एवं नालन्दा और विक्रमशिला की विशाल इमारतें भवन निर्माण कला का सजीव प्रमाण हैं। मूर्तिकला और चित्रकला में भी शिक्षा सुविधाओं के कारण असाधारण प्रगति हुई। अजन्ता–एलोरा के भित्तिचित्र, मूर्तिकला और चित्रकला की शिक्षा के साक्षी हैं।[4]

बौद्ध काल में चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा का विकास हुआ। इसका मुख्य केन्द्र तक्षशिला विश्वविद्यालय था और इसकी अवधि 7 वर्ष की थी। जीवक, चरक, धन्वन्तरि आदि महान चिकित्सक यहीं की देन हैं।

महात्मा बुद्ध ने दृढ़तापूर्वक उपदेश दिया कि मनुष्य धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा नहीं बल्कि दैनिक जीवन में नैतिक एवं चारित्रिक सिद्धान्तों को अपनाकर आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। सत्यनिष्ठा, उदारता, शुद्धता और कामनाओं पर नियंत्रण आचार संहिता के मुख्य पहलू थे एवं बौद्ध शिक्षा पद्धति के आधार स्तम्भ थे।

बुद्ध द्वारा दैनिक जीवन में मध्य मार्ग को अपनाने की बात कहते हुए उन्होंने अपने अनुयायियों को अत्यधिक तप और अत्यधिक विलासिता, दोनों से बचने की सलाह दी। बुद्ध आदर्शवादी भी थे और व्यवहारवादी भी। बुद्ध ने इस तथ्य को पूर्णतः स्वीकार किया था कि चरम तप एवं चरम विलासिता गष्हस्थों के हित में नहीं है। महात्मा बुद्ध ने उपदेश या अनुयायी बनाते हुए जाति प्रथा को महत्व नहीं किया जैसा कि उन्होंने कहा – "मनुष्य जन्म द्वारा नहीं बल्कि केवल अपने आचरण द्वारा ही निम्न जाति या उच्च कुलीन ब्राह्मण बनता है।"[5]

महात्मा बुद्ध ने सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा पर बल दिया। उन्होंने कहा, "कोई व्यक्ति युद्ध में हजारों व्यक्तियों पर विजय प्राप्त कर सकता है किन्तु जो स्वयं पर विजय प्राप्त कर सकता है, वही महानतम विजेता है। अहिंसा का अर्थ है शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार की हिंसा का

अभाव।" कर्म सिद्धान्त में बुद्ध का विश्वास था कि यह एक शाश्वत् नियम है कि मनुष्य अपने कर्मों का ही फल पाता है और वह अपने कर्म के परिणाम से बच नहीं सकता।[6]

ह्वेनसांग के भारत यात्रा विवरण से बौद्ध शिक्षा प्रणाली एवं बौ़द्ध शिक्षा केन्द्रों की अति महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। ह्वेनसांग के विवरण से यही सिद्ध होता है कि बौद्ध मठ, संघाराम, महाविहार शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। ये आधुनिक दृष्टिकोण से तत्कालीन विश्वविद्यालय थे। यहाँ विश्व भर से विद्वान आकर विद्याध्ययन किया करते थे। इन विहारों में बौद्ध संघ के उदीयमान एवं मेधावी शिष्यों को उच्चकोटि की शिक्षा और विद्याओं में परिपक्व बनाया जाता था जिससे वह धर्म एवं संघ के माध्यम से मानव समाज की सेवा कर सकें। अश्वघोष और बुद्धघोष ऐसे मेधावी शिष्य थे जिनके गुरुओं ने पूर्ण विद्वान बना दिया था। ह्वेनसांग ने स्वयं इन विहारों में कुछ समय रुक वहाँ के विद्वानों से शिक्षा प्राप्त की थी।

कश्मीर, जालंधर, कन्नौज आदि नगरों के ऐसे प्रसिद्ध विहार थे जहाँ ह्वेनसांग ने विद्याध्ययन किया था। मातीपुर (मण्डावर) स्थान के एक मठ (संघाराम) में चार माह ठहर कर वहाँ के प्रधान मित्रसेन से "ज्ञान–प्रस्थान शास्त्र" का अध्ययन किया था।[14] कान्यकुब्ज के "भद्र विहार" में तीन माह रुककर पिटकों के आचार्य वीरसेन से शिक्षा प्राप्त की थी। हिरण्य पर्वत अर्थात् मुंगेर के एक मठ (महाविहार) में कई वर्षों तक ठहरा। वहाँ उसने विभाषा तथा वसुबन्धु के मित्र संघभद्र द्वारा रचित न्यायानुसार शास्त्र पढ़ा था।[7]

शिक्षण अवधि में गौतम बुद्ध के समय में एक विशेषता देखने को मिलती है कि सामान्यतया व्यक्ति अपना अध्ययन कार्य 16 से 18 वर्ष की आयु में समाप्त करके गृहस्थ वन चले जाते थे। जो विद्यार्थी उच्च–शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक होते थे, जिनका लक्ष्य किसी विषय में विशेष[16] उपलब्धता हासिल करनी होती थी वे किसी प्रमुख शिक्षण केन्द्र में चले जाते थे। तक्षशिला उच्च–शिक्षा का केन्द्र था, जहाँ अध्ययन करने वाले छात्रों की उम्र 16 वर्ष होती थी। धर्मसूत्रों एवं स्मृति–ग्रंथों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के उपनयन की न्यूनतम आयु क्रमशः आठ, ग्यारह और बारह वर्षों की मानी गयी है। और अधिकतम, सोलह, बाईस तथा चौबीस वर्षों की थी। दूसरी ओर जातकों के वर्णन से जानकारी मिलती है कि सोलह वर्ष की उम्र में राजकुमारों की सभी विषयों में शिक्षण कार्य पूर्ण हो जाते थे।[8] प्राचीन भारत में सदाचार पर प्रमुख बल दिया जाता था। विद्यार्थियों के लिये सदाचारी होना अति आवश्यक माना जाता था। भिक्षुओं का उच्च स्तर शिक्षण देने के लिये जो उपसम्पदा संस्कार होता था, उसके पहले ही संघ के सभी निवासियों का मत लिया जाता था। यदि संघ पक्ष में नहीं होता था तो उपसम्पदा नहीं हो सकती थी। संघ में प्रवेश पाने वाले भिक्षुओं के लिये रोगुक्त होना, ऋण के भार से मुक्त होना, राजा की सेवा में न होना, माता–पिता की अनुमति प्राप्त होना एवं आयु सीमा 20 वर्ष का होना अति आवश्यक थी।

बौद्ध विहारों में प्रवेश परीक्षा अत्यधिक कठिन थी। नालन्दा महाविहार में प्रवेश पाने के लिये द्वार पण्डितों द्वारा ली हुई परीक्षा में 100 विद्यार्थियों में से 10–15 विद्यार्थी ही सफल हो पाते थे। नालन्दा महाविहार के व्याख्यान मण्डलों में प्रवेश के निवास नियम बड़े ही कठिन थे। महाविहार के द्वार पर द्वारपालों (पण्डितों) की नियुक्ति की गयी थी जो कि विभिन्न विषयों में विख्यात विद्वान थे। द्वारपाल विद्यार्थियों से दार्शनिक तथा जटिल समस्याओं पर कठिन प्रश्न पूछते थे।[9]

गौतम बुद्ध ने गृहस्थों को शिक्षा देना एवं सद्मार्ग पर ले जाना बौद्ध भिक्षु का कर्तव्य माना है, श्रीलंका के भिक्षुओं ने सम्पूर्ण राष्ट्र की शिक्षा की जिम्मेदारी स्वयं लेकर गौतम बुद्ध के उपदेशों का पालन किया था। राजा, महाराजा, राज्य अधिकारी ही नहीं, सामान्य जनता की भी शिक्षा–दीक्षा एवं युद्ध विद्या भी भिक्षुओं ने सिखाया था। ज्ञान प्राप्ति के लिए श्रुति का ही सहारा लेना पड़ता था। शिष्य को आचार्य की बात सुनकर उसे धारण करना होता था। आचार्य को भी इसी प्रकार सुनकर कंठस्थ एवं धारण करना पड़ता था।

प्राचीन शिक्षा पद्धति में धारण शक्ति को महत्व दिया गया था। वर्तमान में पुनरुक्ति को दोश समझा जाता है। परन्तु प्राचीन काल में दीर्घ पाठों को कंठस्थ कर याद रखना अति आवश्यक था। मज्झिम निकाय के विशारद ज्ञान रखने वाले मज्झिम भाणक देव स्थविर में सम्पूर्ण मज्झिम निकाय को एक रात में मौखिक रूप से सुनाने की शक्ति थी।[10]

पाठ्यक्रम

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम का विवरण इस प्रकार दिया है कि बालकों को पहले 6 महीनों में सिद्धिहस्त नाम की बालपोथी पढ़ाई जाती थी। इस पोथी में 12 अध्याय थे तथा वर्णमाला में 49 अक्षर क्रमानुसार 300 से अधिक श्लोकों की रचना की गई थी। 16 मास के पश्चात बालाकों को इन पाँच विषयों की शिक्षा दी जाती थी – व्याकरण, तर्कशास्त्र, चिकित्सा, आध्यात्म शास्त्र, शिल्प विद्या।

प्राचीन भारत में नारी, पुरुषों के समकक्ष भेद–भाव से परे शिक्षा ग्रहण करती थी। पुत्र के समान ही पुत्री का भी विद्यारम्भ उपनयन संस्कार सम्पन्न किया जाता था। नारी भी ब्रह्मचर्य का पालन करती थी। साथ ही इनको भिन्न–भिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त था। इनको यज्ञ सम्पादन तथा वेदाध्ययन का सम्पूर्ण अधिकार था। सभा, स्वयं गोष्ठियों में वे ऋग्वेद की रचनाओं का गान किया करती थीं। ऋग्वेद में उल्लिखित है कि "कतिपय विदुशी" स्त्रियों ने ऋग्वेद की अनेक रचनाओं के प्रणयन में योगदान प्रदान किया था। महाभारत से जानकारी प्राप्त होती है कि पाण्डवों की माँ कुन्ती अथर्ववेद में पारंगत थी। बौद्ध ग्रंथों में भी अनेक विदुशी भिक्षुणियों का वर्णन मिलता है जो ज्ञान के उच्चतम स्तर को प्राप्त कर चुकी थी। जैसे संयुत्रनिकाय में खेमा नाम की एक बौद्ध भिक्षुणी का वर्णन मिलता है। इनके उपदेश से प्रसेनजीत इतने प्रभावित हुए कि उपदेश पूर्ण होने पर राजा ने स्वयं सिंहासन से चलकर भिक्षुणी को सम्मानित किया था।

अंगुत्ररनिकाय में दूसरा उल्लेख विशाखा नामक एक उपासिका का मिलता है। जिसके द्वारा पूछे गये प्रश्न का धम्मदीना थेरी के द्वारा दिए गए उत्तर को सुनकर गौतम बुद्ध ने यही कहा धम्मदीना थेरी वास्तव में विदुशी हैं। बुद्ध करते हैं कि यदि ये प्रश्न मुझसे पूछा गया होता तो मैं भी यही उत्तर देता। थेरीगाथा में भिक्षुणियों के 73 गीतों का संग्रह है इससे 522 कवित्त उपलब्ध हैं इनकी रचना आध्यात्मिक रूप से भिक्षुणियों ने की थी। इन भिक्षुणियों में से कुछ तेविज्जा (तिविज्य) की ज्ञाता भी थीं। जो कि अरहतों की विशेषता होती है। एक कथा चन्दा नामक ब्राह्मण स्त्री की है जो कि उस समय महामारी में अपने माता–पिता की मृत्यु के पश्चात् अकेली हो गयी थी। पत्ताचारा नामक बौद्ध भिक्षुणी ने इनको सहारा दिया। स्वयं बौद्ध सिद्धान्तों में दीक्षित कर इन्हें संघ में प्रवेश दिलाया था।[11]

वैदिक काल के अन्त में 200 ईसा पूर्व से स्त्री शिक्षा के साधन सीमित थे। महात्मा बुद्ध के चलते शिक्षा को नवजीवन मिला। उन्होंने अपने शिष्य आनन्द की प्रार्थना स्वीकार करके स्त्रियों को संघ में प्रवेश

की आज्ञा दी फलस्वरूप स्त्री शिक्षा का विकास हुआ। बौद्ध काल की सुशिक्षित स्त्रियों में बौद्ध धर्म की प्रसिद्ध प्रचारिकायें सुभा, अनुपमा एवं सुमेधा कवयित्री के रूप में कालिदास के बाद मानी जाने वाली विजयंका और श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए भेजी जाने वाली अशोक की पुत्री संघमित्रा थी। स्त्रियों ने संघ में प्रवेश करके उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त की। कुछ क्षेत्रों में पुरुषों से प्रतिद्वन्द्विता करके उनसे समानता रखने का प्रमाण दिया। बौद्धकालीन शिक्षा के प्रारम्भिक वर्षों में नारी शिक्षा लगभग उपेक्षित ही रही। किन्तु बाद में महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को भिक्षुणी के रूप में मठों में प्रवेश की अनुमति दे दी थी। भिक्षुणियाँ मठों में रहकर पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए विद्याध्ययन करती थी। वे अकेले आचार्य के साथ नहीं रह सकती थीं।[23] तथा विशिष्ट रूप से निर्धारित भिक्षु, अन्य भिक्षुओं की उपस्थिति में ही उन्हें शिक्षा प्रदान की जा सकती थी। वे पुरुष भिक्षुओं से अलग रहती थीं। कहीं–कहीं स्त्रियों के लिए मठों का निर्माण भी हुआ। बौद्धकाल में स्त्री शिक्षा केवल उच्च वर्ग की महिलाओं को ही उपलब्ध हो पाती थी। सामान्य व निम्नस्तरीय परिवारों की महिलाओं में शिक्षा लगभग न के बराबर ही थी।[12]

बौद्ध शिक्षा के कई केन्द्र विश्वविख्यात शिक्षा केन्द्र के रूप में उभरे। नालन्दा उनमें से सर्वोपरि था। नालन्दा बौद्धकालीन भारत का एक प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र था जिसकी यशोगाथा का विस्तृत वर्णन 7वीं शताब्दी में भारत आये। चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा वृतान्त में देखने को मिलता है। इस शिक्षा–केन्द्र के निर्माण व विकास में आगे चलकर कुमारगुप्त प्रथम के बाद बुद्धगुप्त तथा नरसिंह गुप्तवंशीय राजाओं ने सक्रिय योगदान किया था। नालन्दा एक ओर जहाँ बौद्ध शिक्षा के लिये विख्यात था, वहीं दूसरी ओर यह जैन धर्म के उपदेशों और शिक्षाओं के लिये भी प्रसिद्ध था। नालन्दा दोनों धर्मों का एक सम्मिलित केन्द्र था। इस स्थान के लिये एक विशेष महत्व की बात है कि यह महात्मा बुद्ध और जैन धर्म प्रवर्तक महावीर दोनों के उपदेशों और व्याख्यानों से लाभान्वित हुआ था। इसके विशाल भवन बौद्ध स्थापत्य कला के उत्कृष्ट उदाहरण थे। इसके विस्तृत प्रांगण में कई मंजिला केन्दीय भवन, लगभग 300 सुन्दर एवं आकर्षक अध्ययन–अध्यापन कक्ष, पुस्तकालय भवन, छात्रावास भवन तथा भिक्षुओं (उपाध्याय) और छात्रों के आवासीय भवन आदि बने थे। इसका मुख्य भवन नौ मंजिला था, जिसमें तीन विशाल भवनों का समावेश किया गया था। इन तीन भवनों के नाम **रत्नसागर, रत्नोदधि तथा रत्नंरजक थे।** पुस्तकालय का सम्पूर्ण क्षेत्र धर्मगंज नाम से जाना जाता था। विदेशी छात्र भी यहाँ अध्ययन करने आते थे और उन्हें पुस्तकों की प्रतिलिपि बनाने की अनुमति प्राप्त थी। ह्वेनसांग यहाँ रहकर लगभग चार सौ संस्कष्त ग्रंथों की प्रतिलिपि तैयार करने अपने साथ ले गया था।[13]

नालन्दा की सहायता के लिए दो समितियाँ थीं – 1. शिक्षा समिति – यह समिति प्रवेश, उद्देश्य, दर्शन, धर्म, पाठ्यक्रम तथा शिक्षकों से सम्बन्धित कार्य आदि पर विचार कर निर्णय लेती थी एवं दूसरी समिति 2. प्रबन्ध समिति – शुल्क, भवन निर्माण, मरम्मत, भोजन, वस्त्र, आवासीय सुविधाएँ, चिकित्सा तथा सुरक्षा आदि का प्रबन्ध करती थी। युआन–च्वांग के मतानुसार नालन्दा में डेढ़ हजार अध्यापक एवं दस हजार भिक्षुओं/विद्यार्थियों की विशाल संख्या छात्रों के रूप में विद्यमान थी। इत्सिंग के समय यह संख्या घटकर तीन हजार तक हो गयी थी। नालन्दा विश्वविद्यालय में अट्ठारह पंथों के ग्रंथ पढ़े जाते थे। इनमें वेद–वेदांग, हेतुविद्या, शब्दविद्या, चिकित्सा विद्या, अथर्ववेद या मंत्रविद्या, सांख्य इत्यादि विद्याएँ थीं। साथ ही यह एक हजार व्यक्ति ऐसे भी थे जो बीस सूत्र ग्रंथ एवं शास्त्र समझ सकते थे।[14]

नालन्दा विश्वविद्यालय के बाद यदि किसी बौद्धयुगीन विश्वविद्यालय का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है तो वह वल्लभी विश्वविद्यालय का ही हो सकता है। बौद्ध धर्म के दो उपधर्मों महायान और हीनयान में से नालन्दा में महायान को प्रमुखता दी गयी तो वल्लभी में हीनयान का

अधिक प्रभाव था। वल्लभी भारत के पश्चिमी प्रान्त गुजरात के काठियावाड के पूर्वी और स्थित था। इस विश्वविद्यालय की सबसे महत्वूपर्ण विशेषता इसका उदारवादी स्वरूप था। यह अन्य धर्मों के प्रति कट्टर विरोधी न होकर उनके प्रति सहिष्णु रहकर बौद्ध शिक्षा प्रदान करता था। इस विश्वविद्यालय में लगभग 200 विद्वान शिक्षक–भिक्षु और 6000 छात्र भिक्षु विशाल कक्षों में सामूहिक रूप से अध्ययन–अध्यापन में संलग्न रहते थे।[15]

विक्रमशिला बौद्ध विहार भी बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। यह तत्कालीन मगध राज्य में गंगा के रमणीक तट पर स्थित पहाडी के ऊपर निर्मित किया गया था। इसका निर्माण पाल वंश के राजा धर्मपाल ने कराया थाि। सुरक्षा की दृष्टि से पूरे क्षेत्र को 6 द्वारों वाली सुदृढ़ दीवार बनाकर चारों ओर से घेर दिया गया था। शिक्षण–प्रक्रिया के संचारण के लिए इसमें अनेक विशाल एवं भव्य शिक्षण कक्ष, सभागार, छात्रावास तथा शिक्षकों के आवासों का निर्माण किया गया था। विक्रमशिला में 108 योग्य एवं कुशल भिक्षु लगभग 3000 छात्रों का शिक्षण कार्य करते थे। इस शिक्षा केन्द्र में भी बहुत से विदेशी छात्र आकर विद्याध्ययन करते थे।[16] शिक्षकों में दीपांकर, श्रीतान, रत्नवज्र, लीलावज्र, कृष्ण समरवज्र, प्रज्जनाकर मति, कमलरक्षित, बोधिभद्र तथा नरेन्द्र आदि भिक्षुकों की ख्याति दूर–दूर तक फैली हुई थी। अन्य बौद्ध शिक्षा केन्द्रों की भांति यहाँ भी व्याख्यान, परिचर्या, दृष्टान्त, वाद–विवाद, शास्त्रार्थ आदि विधियों के द्वारा शिक्षण कार्य किया जाता था।

नादिया बौद्ध शिक्षा केन्द्र 11वीं शताब्दी के मध्य बंगाल के तत्कालीन नवद्वीप नगर में स्थापित किया गया था। नवद्वीप नगर को गौड राजा लक्ष्मणसेन ने अपनी राजधानी के रूप में बसाया था तथा पालवंश के राजाओं ने यहाँ स्थापित किये गये शिक्षा केन्द्र की प्रगति में सहायता की थी। नादिया शिक्षा केन्द्र में बौद्ध धर्म के साथ–साथ संस्कृत, न्यायशास्त्र, तर्कशास्त्र तथा तन्त्रशास्त्र की उच्च कोटि की शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र बन गया था। वाद–विवाद परिचर्या और शास्त्रार्थ आदि शिक्षण–विधियों की प्रधानता थी। इस विश्वविद्यालय में लगभग 600 शिक्षक एवं 400 छात्र अध्ययन–अध्यापन में कार्यरत थे। मुस्लिम काल तक इस विश्वविद्यालय ने शिक्षा के एक प्रमुख केन्द्र के रूप में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी।।[17]

ओदन्तपुरी बौद्ध विश्वविद्यालय मगध राज्य में स्थित एक महत्वपूर्ण शिक्षा केन्द्र था। इस बौद्ध विश्वविद्यालय में लगभग 1000 बौद्ध भिक्षु धर्मानुसार नियम संयम से रहते हुए अध्ययन–अध्यापन कार्य में संलग्न रहते थे। यहाँ एक विशाल पुस्तकालय की स्थाना की गयी थी। जिसमें बहुत बड़ी संख्या में ब्राह्मणीय धर्म, दर्शन, व्याकरण, तर्क, तंत्र, ज्योतिष तथा बौद्ध साहित्य से सम्बन्धित अमूल्य पुस्तकों का संग्रह किया गया था। इससे तत्कालीन बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया था। यहाँ की शिक्षा नालन्दा की भांति निःशुल्क थी। नालन्दा बौद्ध विहार की परम्परा को इन बाद के बौद्ध विश्वविद्यालयों ने आगे बढाया। मुस्लिम विजय काल के दौरान इन बौद्ध विहारों से कई विद्वान निकलकर तिब्बत चले गये जहाँ पर उन्होंने अपने ग्रंथ लिखे। बौद्ध धर्म के तिब्बती विश्वकोश से उनका समावेश मिलता है।[18]

निष्कर्ष

बौद्ध काल की शिक्षा की अनेक विशेषताएँ वर्तमान समय में भी प्रासंगिक हैं। यद्यपि बौद्धकालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार करना था तथापि बौद्ध शिक्षा के अन्य उद्देश्य जैसे व्यक्तित्व का विकास, नैतिक चरित्र का विकास, वर्तमान में भी पूर्णतया प्रासंगिक

हैं जिन्हें नई शिक्षा प्रणाली 2020 में समाहित करने का प्रयास किया गया है। बौद्ध धर्म व गौतम बुद्ध के उपदेश बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली के केन्द्र बिन्दु थे परन्तु बौद्ध शिक्षा में निहित शान्ति, अहिंसा, प्रजातान्त्रिक संगठन की प्रवृत्ति, छात्रों व अध्यापकों का त्यागपूर्ण जीवन आदि अनेक ऐसे तत्व हैं जो वर्तमान जीवन में चमक–दमक, हिंसा से युक्त परिवेश, धन व अधिकार की लालसा तथा घृणा व द्वेशों से परिपूर्ण वर्तमान जीवन में बौद्ध शिक्षा के ये तत्व सार्थक योगदान करेंगे।

सन्दर्भ

1. भिक्षु, राहुल. (2000). सांकृत्यायन, दीघनिकाय प्रथम सुत्त, महाबोधिसभा, बनारस, पृष्ठ 84–86.
2. अल्टेकर. ए.एस. (1994). एजूकेशन इन एन्श्येन्ट इण्डिया, वाराणसी, पृष्ठ 228.
3. बरुआ, बी.जी. स्टडीज इन बुद्धिज्म, सरस्वती लाइब्रेरी, कलकत्ता, पृष्ठ 1–5.
4. दूबे, सत्यनारायण शरतेन्दु,. (2009). भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास–समस्याएँ, अनुभव पब्लिकेशिंग हाउस, इलाहाबाद, पृष्ठ 36–41.
5. मेहता, रतिलाल. (1939). बुद्धिस्ट इण्डिया, बम्बई, पृष्ठ 124.
6. गुप्ता, राजेश चन्द्र. बौद्ध दर्शन का प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति पर प्रभाव, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 15.
7. ह्वेनसांग, अनुवादक शर्मा, ठाकुर प्रसाद. (1972). ह्वेनसांग की भारत यात्रा, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, मालवीय नगर (इलाहाबाद), पृष्ठ 109–112.
8. सिंह, डा0 मदन मोहन. (1972). बुद्धकालीन समाज और धर्म, प्रकाशित बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, प्र0सं0, पृष्ठ 10–13.
9. कैसल्यायन, भंदत आनंद. उपादन जातक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
10. दसनायक, कु. बण्डार मैणिका. श्रीलंका का प्राचीन इतिहास, भिक्षु ग0 प्रज्ञानन्द रिसालदार, लखनऊ, पृष्ठ 222–223.
11. सिंह, उपिन्दर. (2017). प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पियर्सन इंडिया एजूकेशन सर्विसेज।
12. गुप्ता, राजेश चन्द्र. (2010). बौद्ध दर्शन का प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति पर प्रभाव, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 178–180.
13. पाठक, श्याम बिहारी. (2010). प्राचीन भारत में शिक्षा दिशा–कला प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 100.
14. बापट, पी.वी. (1956). बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष, पब्लिकेशन डिविजन, ओल्ड सेक्रेटरियट, दिल्ली, पृष्ठ 119.
15. वही, पृष्ठ 123–124.
16. सिंह, अनिल कुमार. (2008). बौद्ध कालीन शिक्षा पद्धति, कला प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 25.
17. वही, पृष्ठ 27.
18. श्रीवास्तव, केशवचन्द्र. (2011). प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, पृष्ठ 15–20.